वर्षोपहार

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन, बीकानेर (राज.)

समर्पणः-

बाधा के घन घिरे अनेकों-
उनको रोक न पाया।
पैंसठ वर्षों पर यह नूतन-
"वर्षोपहार" सजाया।।

इन्द्रधनुष के रंगों में ये-
अपनी गाथा लिखते।
जैसे तरह-तरह के अनुभव-
सोते-जगते दिखते।।

इनका ही मेरे जीवन में-
सब दिन रहा सहारा।
वीणापाणी ग्रहण करें यह-
वर्षोपहार हमारा।।

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

साहित्यिक मूल्यों के अवधारक

साहित्यकारों की वर्त्तमान पीढ़ी कई विसंगतियों में जी रही है। एक ओर पुरानी पीढ़ी के सांस्कृतिक अवदानों को सुरक्षित रखने का प्रयास; दूसरी ओर भविष्य के लिए अपनी पहचान बनाने की ललक। इनके साथ ही शीघ्रातिशीघ्र छलांग लगाने की चाह भी कम बलवती नहीं है। फलत ऐसे बिरले ही हैं, जिन्होंने पूरी निष्ठ के साथ मात्र साहित्य-सर्जन को ही अपना सर्वस्व माना है।

कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक प्राप्त कर लेना आज के भौतिकवादी व्यावसायिक जीवन का लक्ष्य बन गया है। इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। प्रसार-प्रचार का बोलबाल बढ गया है। सच्ची साधना की उपेक्षा होने लगी है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में जैसे ह्रास दिखाई पड़ने लगे हैं, ठीक वही लक्षण साहित्य के क्षेत्र में प्रत्यक्ष हैं। आज का साहित्यकार अपनी साधना से नहीं, वरन् प्रचार-माध्यमों के सहारे समाज में शीर्षस्थ होने की होड़ में लग गया है। किन्तु ऐसे अन्धकार में भी कुछ साधनारत व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपने को प्रसार-प्रचार की दुनिया से सर्वथा अलग रखा है। महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया साहित्य के एक ऐसे ही पुष्ट हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने खोखली डुग-डुगी बजाकर अपने को कहीं थोपने की चेष्टा नहीं की। प्रचार की दुनिया से सर्वथा अलग रहते हुए इन्होंने मात्र साधना को ही अपना लक्ष्य समझा। इन्होंने साहित्य की यज्ञ-वेदिका में निरंतर साधना की समिधा प्रज्वलित रखी है।

आज के समाज में इस प्रकार के साधक साहित्यकारों की नितांत कमी है।

रामपुरिया जी ने जीवन के विभिन्न पक्षों को निकट से देखा है। एक ओर उन्हें लक्ष्मी का वरद् हस्त दुलराता रहा; तो दूसरी ओर नियति के कठोर दंश का भी अनुभव उन्हें हुआ है। सुख-दुख -जीवन के हर पक्ष का उन्हें साक्षात्कार हुआ है। किन्तु हर परिस्थिति में एक स्थितप्रज्ञ के रूप में उन्होंने अपनी साधना की लौ जगाए रखी।

साधना की ज्वाला में अपने को निरंतर झोंके रखना, इनकी जीवन-प्रणाली बन गयी। साधना इनके जीवन का सर्वस्व है।

साधना के इसी अटूट संबल ने महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया को एक ऐसा व्यक्तित्व प्रदान किया है; जिसमें साहित्य-सर्जन की निश्छल प्रेरणा के साथ समाज के विभिन्न अंगों को उचित मार्ग-दर्शन एवं दिशा-निर्देश करने की भी क्षमता है।

साहित्य रामपुरिया जी के जीवन का आवश्यक अंग हो गया है। ये साहित्य के बिना रह नहीं सकते हैं। यही कारण है कि आज ये अर्द्ध-शतक से भी कहीं अधिक बहुमूल्य ग्रंथों को प्रणीत करने में सफल हो सके हैं। इनके साहित्य में मानवता के जाग्रत स्वरूप का दर्शन होता है। इन्होंने भारत के प्राचीन ऋषियों की तरह आज भी सच्चे हृदय से भारतीय संस्कृति

को सुरक्षित रखने की चेष्टा की है। इनके विपुल साहित्य में महाकाव्यों की पर्याप्त संख्या है। इनके सभी महाकाव्य उन्हीं देवी-देवताओं एवं धर्म-धुरी व्यक्तित्वों पर आधारित हैं; ज़िन्होंने समाज को एव देश-राष्ट्र को नयी दिशा दी है। भारतीय संस्कृति के सभी पोषक तत्त्वों को इन्होंने पूरी सार्थकता के साथ वाणी दी है।

इनके साहित्य का विशुद्ध काव्य-गुणों से सम्पृष्ट स्वरूप तथा इनकी सम्प्रेषणीयता ने इन्हें लोकप्रिय बनाया है।

महाकाव्यों के अतिरिक्त फुटकल काव्यों में भी इन्होंने अपनी भावनाओं को स्वर प्रदान किया है। इनके छोटे-छोटे फुटकल गीत, सच कहा जाय तो गागर में सागर की उक्ति सार्थक करते हैं।

प्रस्तुत 'वर्षोपहार' की रचनाएँ इन्हीं आर्ष परम्परा के पोषक हैं। इनकी सहज सम्प्रेषणीयता प्रशंसनीय ही नहीं, अपितु अनुकरणीय भी है।

मेरा विश्वास है, भविष्य में इनके साहित्य का प्रकाश और भी सात्विक त्वरा के साथ प्रस्फुटित होता रहेगा।

मैं प्रारम्भ से ही इनके साहित्य का प्रशंसक रहा हूँ, आज भी हूँ। मैं यही कामना करता हूँ कि वीणापाणि माँ भारती के चरणों पर इनके द्वारा समर्पित निर्माल्यों की इतनी अपार शृंखला बनी रहे; जिनकी गणना भी न की जा सके।

महोपाध्याय माणकचन्दजी रामपुरिया सही अर्थों में साहित्य के उत्कृष्ट मानदण्डों के अवधारक हैं। शुभम्

सम्मुख- राजेन्द्र आश्रम
टील्हा, गया - बिहार

-गोवर्द्धन प्रसाद 'सदय'

अपनी दृष्टि

पुस्तक आपके समक्ष है। यहाँ जीवन के जिन उद्वेगों और उद्‌गारों को वाणी दी गयी है, वे स्वत प्रत्यक्ष दिखाई देंगे।

वर्ष, माह, सप्ताह और दिन ... सब कुछ कैसे बीतते चले गए, कहा नहीं जा सकता। वर्त्तमान।। .

सम्पूर्ण सृष्टि में यदि कोई चीज अल्पातिअल्प अस्तित्व धारण करनेवाली है, तो वह वर्त्तमान अवधि ही है।

वर्त्तमान से बढ़कर अल्पायु वाली कोई वस्तु किसी ने नहीं देखी। वह क्षण कोई कभी नहीं पकड़ सकता, जिसमें वर्त्तमान का अस्तित्व है। नदी के अखण्ड प्रवाह के सदृश समय चलता रहता है। काल को कोई रोक नहीं सकता। काल आता नहीं, जाता है। समय के आगमन की आहट नहीं मिलती। उसके जाने के क्षण यादगार के रूप में सुरक्षित रहते हैं। समय कब आया, कब चला गया- इसका कोई लेखा-जोखा रखा नहीं जा सकता।

बीते हुए समय की याद सँजोई जा सकती है।

आनेवाले भविष्य के सपने संजोये जा सकते हैं। किन्तु भविष्य, वर्त्तमान के पालने में बैठ भी नहीं पाता कि उसे अतीत के राग से अनुरंजित होना पड़ जाता है। यही विधि का विधान है- अटूट, अनवरत, शाश्वत।

जीवन के पैंसठ बसन्त बीत गए।

लगता है, सब कुछ अभी-अभी बीता है। आज के दृष्टि-पथ में वे सम्पूर्ण दृश्य घूम रहे हैं, जिन्हें इस वर्षोत्सव ने अतीत बना दिया है।

कैसे थे वे हास्य-उल्लसित क्षण?

कैसे थे अश्रु-विगलित प्रहर? -आज उन परिवेशों की एक झलक ही अनुभूत हो सकती है। सब अतीत हो गए। सब व्यतीत हो गए।

"वर्षोत्सव" उन्हीं क्षणों का एक दर्पण है। जीवन के हार-जीत, अश्रु-हास, विजय-पराजय -सब कुछ आप देख सकेंगे। क्या खोया, क्या पाया। -सब कुछ का लेखा-जोखा आप इन गीतों में झांक सकते हैं।

ये गीत मेरे जीवन के जीवन्त उद्‌गार हैं। मैं इनमें डूबता-उतराता रहा हूँ। यदि ये हमारे पाठकों को भी अपने में लवलीन कर सकने में समर्थ हुए; तो मैं इसे सार्थक समझूँगा।

हिन्दी साहित्याकाश के अप्रतिम हस्ताक्षर, वरेण्य साहित्यकार आदरणीय भाई श्री गोवर्द्धन प्रसाद जी 'सदय' ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी इसके लिए आभारी हूँ, उन्हें अनेकानेक धन्यवाद। पुस्तक प्रकाशन में भाई श्री रामसिंह जी राजपूत ने अथक परिश्रम करके जिस त्वरित गति से इसके प्रकाशन की व्यवस्था की उसके लिए उन्हें भी धन्यवाद।

रामपुरिया भवन -माणकचन्द रामपुरिया
रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

अनुक्रमणिका

जीवन-मणि

माना धरती बहुत बड़ी है-
सुख से जन-जन रहते हैं;
जिस पर जो आ पड़ता उसको-
शीश झुका सब सहते हैं।

सब को यहाँ यही चिन्ता है-
अपना सुखी समाज रहे;
पूर्ण मनोरथ होकर जीएँ-
सब दिन सिर पर ताज रहे।

मानव-जीवन इसी लालसा-
में नित बढ़ता आया है;
गया सिन्धु के महा अतल में-
नभ पर चढ़ता आया है।

लता-द्रुमों का रेशा-रेशा-
पागल नर ने देख लिया;
पर्वत खँडहर नद नाले तक-
सबका लेखा लेख लिया।

देख लिया सब ओर कहीं भी-
मिलता अक्षय तत्त्व नहीं;
मिले बहुत आकर्षण लेकिन-
जीवन में अमरत्व नहीं।

खोज रहा है मनुज युगों से-
और खोजता जाएगा;
जीवन-मणि के लिए सिन्धु में-
सदा डूबता जाएगा।।

समुदाय का धर्म

बड़ा कठिन है यहाँ समझना-
पाप-पुण्य की भाषा;
नहीं किसी ने गढ़ी आज तक-
इसकी दृढ़ परिभाषा।

कोई कहता सत्य-प्रेम का-
पाठ सदा है पढ़ना;
कोई कहता आत्म-शौर्य से-
उच्च शिखर पर चढ़ना।

कोई कहता, अपने मन में-
कोई कलुष न आए;
कोई करे प्रहार तो उसके-
सम्मुख शीश झुकाए।

न्याय-नीति पर चलने वाला-
देखे अपने को ही;
सहले, जो भी घात उसे दे-
कोई पातक द्रोही।

✦ ✦ ✦

किन्तु जहाँ समुदाय वहाँ क्या
ऐसा सम्भव होगा?
सब कुछ सहनेवाला जग में
कैसा मानव होगा?

व्यक्ति सदा समुदाय साथ ही
अब तक चलता आया
साथ-साथ ही रहकर नर ने
भू पर सब कुछ पाया।

✦ ✦ ✦

व्यक्ति नहीं समुदाय जाग कर-
भू का अनय मिटाए;
व्यक्ति नहीं समुदाय समूचा-
पावन दीप जलाए।

जहाँ कहीं निर्बल को कोई-
छल से क्रूर सताए।
पुण्य यही निर्बल को बढ़कर
यह समुदाय बचाए।।

कालातीत

एक-एक क्षण काल खण्ड का-
होता कालातीत;
वर्त्तमान का अतुल रूप भी-
जाता क्षण में बीत।

क्षण-क्षण का यह काल-विभाजित
बनता काल अनन्त;
और पुनः इस काल-खण्ड का-
होता क्षण में अन्त।

काल-प्रवाह अनन्त अखण्डित-
यहाँ नही व्यवधान;
वर्त्तमान है उस अनन्त का-
लघुतम रूप-विधान।

पलक मारने जैसा भी क्या
इसका है अस्तित्व?
उसकी फिर क्या बात कि जिसका
कहीं न अपना तत्त्व।

क्षणभर जो कुछ प्राप्त न करता-
आते बना अतीत;
ऐसे के सँग कौन कहाँ तक-
गाए मन का गीत।

काल अनश्वर वह प्रवाह है-
जिसका कहीं न अन्त;
खण्ड-खण्ड कर दिया मनुज ने-
इसका व्याप्त दुरन्त।

महाकाल के रक्षण में ही-
रहता विश्व सभीत;
इसी काल के पद पर चलकर-
होता कालातीत।।

सृष्टि का उत्थान

बँद अम्बर से बरसती-
भींगता मन-प्राण।
भग्न उर से गूँजते हैं-
नित्य जय के गान।।

कौन जाने मेदिनी का-
ताप ही है मेह।
चूमता है जा गगन में-
चाँदनी का गेह।।

जो कलेजा हो गया है-
टूट कर दो चाक;
भावना अंगार से जो-
हो गयी है राख।

उस हृदय को चाहिए कुछ-
प्यार का आधार;
होंठ को सहला सके जो-
नेह-चुम्बन भार।

आँख पर बरसा सहे जो-
एक शीतल धार।
दे सके जो आदमी को-
आदमी का प्यार।।

माँगती है भूमि नभ से-
दो किरण का दान;
चाहिए अब शान्ति पथ से
सृष्टि का उत्थान।।

मत ढूँढ़ो इतिहास

नहीं जानता इस धरती पर–
किसका क्या इतिहास;
जाने किन किरणों का भू पर–
फैला कहाँ प्रकाश ?

दृष्टि बहुत सीमित है नर की–
सीमित सारी शक्ति;
अपने घेरे में रहती है–
घृणा–द्वेष अनुरक्ति।

अलग–अलग इतिहास सभी का–
अलग सभी का मान;
एक तरह से कभी न मिलता–
जीवन में सम्मान।

अलग–अलग ढाँचों में रहता–
अलग–अलग आकार;
नहीं जानता मिला किसे कब–
कैसा कौन प्रकार।

गूँज रही अमराई जिससे–
पुलकित है उद्यान;
जाने किस निर्झर से फूटा–
स्नेह–तरंगित गान ?

छिटक रहा है जो वसुधा पर-
जीवन का अनुराग;
जाने किस कोकिल-कंठी का-
फूटा पंचम् राग।

जो भी जितना मिला उसी से-
मीत, बुझा लो प्यास;
निर्झर का उद्गम मत देखो-
मत ढूँढ़ो इतिहास।

नया केतु फहराए

कितना दर्द सहा है मैंने
किसको क्या बतलाऊँ?
छोटे जीवन की यह विस्तृत-
गाथा किसे सुनाऊँ?

कितनी बार विवशता में ही-
अपना शीश उतारा;
कितनी बार स्वयं अपने को-
मैंने ही है मारा।

लेकिन कोई समझ न पाता-
क्या मजबूरी होती;
जीवन की तो प्रकट कहानी-
सदा अधूरी होती।

उच्च शिखर का सुमन कहीं से-
पास हमारे आया;
पूछे कोई शैल श्रृंग से-
मुझ तक क्यों कर लाया।

छोड़ो अब इतिहास ढूँढ़ना-
मन को शान्त बनाओ;
जीवन के इस शुष्क वृन्त को-
कुछ पीयूष पिलाओ।

नयी किरण अब फूटे नभ में-
नया केतु फहराए;
मानव-मानव के अन्तर में-
स्नेह सुधा लहराए।।

दीपक राग

गीत तुम्हें गाना ही होगा।
कब तक मौन रहोगे ऐसे-
भस्मावृत अंगारे जैसे?
ज्वाला पर जो राख पड़ी है
अब उसे हटाना ही होगा।
गीत तुम्हें गाना ही होगा।।

जन-जन पर है भीषण जड़ता-
पंथ किसी को सूझ न पड़ता;
तमसावृत्त हृदय में तुमको-
मधुदीप जलाना ही होगा।
गीत तुम्हें गाना ही होगा।।

✦ ✦ ✦

भावों में है शक्ति अपरिमित-
न्याय-नीति से जग से परिचित;
जगे दीप की बाती जिससे-
वह राग सुनाना ही होगा।
गीत तुम्हें गाना ही होगा।।

क्या दूँ?

याचक। माँग रहे हो मुझसे?
कैसे तुझको क्या दूँ?
ऊपर नभ में चाँद-सितारे-
देख रहे हैं आँख पसारे;
ये सब भी कुछ माँग रहे हैं
किसके हित मैं वस्तु कौन-सी
आज कहाँ से ला दूँ?
कैसे तुझको क्या दूँ?

✦ ✦ ✦

नीचे है पाताल जहाँ पर-
सृष्टि रुकी है आज ठहर कर;
एक तार में बँधे सभी हैं
मूल्य मनुज का बढ़ा रहे हैं।
कैसे उसे गिरा दूँ?
कैसे तुझको क्या दूँ?

✦ ✦ ✦

लेन-देन व्यापार लगा है-
मानव का संसार जगा है;
सूना नभ जल देता मैं भी-
भूतल का शृंगार देख कर-
गीत नया क्या गा दूँ?
कैसे तुझको क्या दूँ?

मत झाँको

आँखों में मत झाँको।
रूप तुम्हारा इतना भास्वर-
देख न पाता कोई जी भर;
आँख न मिलने पाती तुम से-
चाहे जितना ताको।
आँखों में मत झाँको।।

झाँक रहा शशि गंगाजल में-
मधप बँधा है स्वयं कमल में;
तुम भी अन्तर-तर में उतरो-
अपनी छवि खुद आँको।
आँखों में मत झाँको।।

सत्य हुआ कब मन का सपना?
उजड़ गया अब नन्दन अपना;
तार-तार जीवन कंथा को-
प्रेम सूई से टाँको।
आँखों में मत झाँको।।

छन्द न टूटें

गीतों के ये छन्द न टूटें
इन गीतों को बड़े जतन से-
मन में रक्खा प्राण-रतन से;
उनसे मृदु सम्बन्ध न टूटें
गीतों के ये छन्द न टूटें।।

प्राणों में गीतों का गायन-
गीतों में प्राणों का गुंजन;
मादक ये अनुबन्ध न टूटें
गीतों के ये छन्द न टूटें।।

मुक्त गीत औ' मुक्त रहूँ मैं-
गीतों में उन्मुक्त कहूँ मैं;
तार मृदुल स्वच्छन्द न टूटे-
गीतों के ये छन्द न टूटें।।

इनमें मन की कली खिली है-
इनसे अभिनव तृप्ति मिली है;
मन के ये आनन्द न छूटें-
गीतों के ये छन्द न टूटें।।

प्रेम-कहानी

जगने दो, मैं खुद कह दूँगा-
अपनी प्रेम-कहानी।

बहुत दिनों के बाद अचानक-
आई मुझको नींद भयानक;
सोते-सोते ही बीती है-
अपनी भरी जवानी।
जगने दो, मैं खुद कह दूँगा-
अपनी प्रेम-कहानी।।

आँखों में थी भरी खुमारी-
डगमग पावों की लाचारी;
ऐसे में भी कर जाती थी-
कोई खुद मनमानी।
जगने दो, मैं खुद कह दूँगा-
अपनी प्रेम-कहानी।।

अब तो सोया सब कुछ खो के-
ऊपर पत्थर के हैं ढोके;
अब तो भरी-भरी आँखों से-
छलक रहा है पानी।
जगने दो, मैं खुद कह दूँगा-
अपनी प्रेम-कहानी।।

✦ ✦ ✦

✦ ✦ ✦

सब का मन मुस्काता ही है-
जीवन में यह आता ही है;
लेकिन नहीं किसी ने की है-
अब तक यह नादानी।
जगने दो, मैं खुद कह दूँगा-
अपनी प्रेम-कहानी।।

प्रेम शृंखला

पूजा के उपकरण लिए हम-
प्रतिदिन मंदिर आते हैं;
वड़े भाव से सदा ईष्ट के-
सम्मुख गीत सुनाते हैं।

निश्छल मन के मृदु भावों के-
कोमल फूल चढ़ाते हैं;
अपनी झोली में प्राणों के-
दीप संजोए आते हैं।

धूप-दीप नैवेद्य चढ़ाते-
मन के पावन भावों के;
क्षण भर पीड़ित हुए न दुख से-
अपने गहन अभावों के।

वर्षा हो या कडी धूप हो-
मन होता लाचार नहीं;
कण भर को भी शुष्क हुआ है-
पूजा का उपहार नहीं।

यह अटूट मानस है जिसमें-
स्नेह वर्त्तिका जलती है;
युगों-युगों के तृपित नयन में-
प्रेम शृंखला पलती है।

यही किरण है, जो अब जलकर-
तम का कुम्भ विदारेगी;
जिसको अब तक ढूँढ़ रहा जग-
उस प्रकाश को लायेगी।।

नया सोता

सौर्य-मण्डल
प्रकाश का पुंज है-
अनेकों सूर्य तप रहे हैं-
मानो दिन मणियों का कुंज़ है।।

तपना, तपना केवल
तपना ही यहाँ काम है।
यहाँ कोई मोह नहीं
ममता नहीं सब निष्काम है।।

यह कर्म नहीं, अकर्म नहीं;
निष्कर्म का द्योतक है।
तिलभर भी कहीं
स्वार्थ नहीं-परार्थ का द्योदतक है।।

पृथ्वी कील पर
घूर्णित चलायमान है।
अन्धकार का परिवेश-
और वहीं जागा दिनमान है।।

जीवन महाकाल के
चक्र में; आवर्तित परिवर्त्तित है।
इसके सम्मुख भविष्यत् का
अभेद्य अन्धकार संचित है।।

काश! एक किरण
फूटती, जीवन आलोकित होता,
प्राणों के विकार-प्रस्तरों
को फोड़कर, प्रवाहित होता नया सोता।।

माध्यम भर

मैं तो केवल माध्यम भर हूँ।।

पता नहीं क्या हो जाता है?

कुछ पाता, कुछ खो जाता है;

कोई राग कहीं है गाता–

मैं तो उसका बिछुड़ा स्वर हूँ।

मैं तो केवल माध्यम भर हूँ।।

सुख-दुख के क्षण बीत गए हैं–

जीवन के घट रीत गए हैं;

सुख का मैं संस्पर्श नहीं हूँ–

खुले दृगों का एक प्रहर हूँ।

मैं तो केवल माध्यम भर हूँ।।

सागर से जो मिलने जाती–

अपनेपन को ढूँढ न पाती–

मत समझो मैं नदी सुहानी–

मैं तो उसकी एक लहर हूँ।

मैं तो केवल माध्यम भर हूँ।।

जितना उसके मन में आता–

उतना उसका रूप सजाता;

उस अशेष के शेष हास का

मैं तो सस्मित एक अधर हूँ।

मैं तो केवल माध्यम भर हूँ।।

स्वर टूट न सकते

जीवन के स्वर टूट न सकते।
बहुत दिनों से मन को साधा-
चाह-खगों को कसकर बाँधा;
जिन पर भावी जीवन का स्वर-
उनके सपने छूट न सकते।
जीवन के स्वर टूट न सकते।।

यों तो सब कुछ बिखर रहा है-
भावों का मधु-स्राव बहा है;
लेकिन राग-भरे अन्तर के-
मेरे मधु-घट फूट न सकते।
जीवन के स्वर टूट न सकते।।

मधु ऋतु बीती, पतझर आया-
सूखे पत्तों का स्वर छाया;
मेरे मधुवन के फूलों को-
ऐसे कोई लूट न सकते।
जीवन के स्वर टूट न सकते।।

गजल

जिन्दगी तो है वही जो जी रहे हैं।
मस्त आँखों में मिला जो पी रहे हैं।।

चोट दिल पर जो लगी सब सह चुके हैं-
चाक सीने को अजाने सी रहे हैं।।

दोस्ती का नाम जो बदनाम करते-
आँख में वे खून बनकर ही बहे हैं।।

है बड़ा मुश्किल बताना प्यार से ही-
जो जहाँ में घात अब तक हम सहे हैं।।

मैं किसी का राग गाया गा न पाया-
क्या कहूँ? सब भाव अपने अनकहे हैं।।

दुश्मनी का भेद उनसे पूछना क्या-
आग में वो डालते ही घी रहे हैं।।

जिन्दगी तो है वही जो जी रहे हैं-
मस्त आँखों में मिला जो पी रहे हैं।।

जीते रहते

जो भी जैसे-
थे सब बीते,
किन्तु अन्त तक
लगता सब है
रीते-रीते।।

अपना जिनको
हम सब कहते;
बीते उनके
घात हृदय पर-
सहते-सहते।।

राग निशा के
भू पर खिलते,
मन हर्षाता-
विह्वल होता
मिलते-मिलते।।

जीवन का हठ
पूरा करते
जीते रहते
प्रतिपल [illegible]
[illegible]।।

दिनमणि का आना

सुबह सवेरे
ऊषा खिलती;
नयी धूप की-
आभा मिलती।

सर्द हवा का-
झोंका आता;
अंग-अंग तक-
सिकुड़ा जाता।

कोई अवयव
काम न करता;
मन रहता है
डरता-डरता।

चाह यही-
उठती है हरदम;
शीतलता कब-
होती है कम।

तरह-तरह के-
कपड़े तन पर;
लाद बना है
मानव गट्ठर।

कोई काम-
नहीं बनता है;
दाँत-दाँत से-
ही बजता है।

ऐसे में जब-
धूप निकलती;
छत से नीचे-
आती चलती।

मन में उठती-
मोद लहर-सी;
जगती आँखें-
पुष्प-प्रहर-सी।

कितना अच्छा-
और सुहाना;
लगता दिनमणि-
का मुस्काना।।

गीत नया गाता है

कोई कितना
    काम करेगा ?
एक डगर पर
    पाँव धरेगा।

राह जहाँ भी-
    चलती जाती;
बदली-बदली
    छटा दिखाती।

एक रूप कब-
    रहता दृग में;
शान्ति कहाँ है
    चंचल मृग में।

क्रान्ति भुवन का-
    सच्चा जीवन;
आता इससे-
    नव परिवर्त्तन।

रुक जाना है
    शान्ति अचानक
जड़ता का है-
    यह संवाहक।

इसे दूर-
करने का क्रम है
जागृत जीवन
का उपक्रम है।

जो भी जगता
सब पाता है;
गीत नया सब
दिन गाता है।।

चित्रों का अम्बार

कितना देख सकोगे देखो–
चित्रों का अम्बार लगा है।।
तुम हो एक अकेले लेकिन–
पास अनेकों लोग खड़े हैं;
कोई गहरे सागर जैसे–
पर्वत से कुछ बड़े–बड़े हैं।
पहला ही यह चित्र नहीं है–
कितना देख सकोगे देखो, यह तो बारम्बार लगा है।
चित्रों का अम्बार लगा है।।

कहीं छलकता हास अधर पर–
कहीं आँख पर चढ़ी खुमारी;
कहीं मचलता बचपन का हठ–
कहीं जवानी की चिनगारी।
कहीं आँखों में आँसू तो फिर–
कहीं हृदय में प्यार जगा है।
कितना देख सकोगे देखो–
चित्रों का अम्बार लगा है।।

देखो कोई अपना सब कुछ–
हँस–हँस यहाँ लुटाने आया;
कोई कहीं किन्हीं आँखों के–
मोती यहाँ चुराने आया।
कितने अपने और पराए–
का मेला संसार लगा है।
कितना देख सकोगे देखो–
चित्रों का अंबार लगा है।।

अन्त नहीं है किसी वस्तु का-
सब अनन्त के पथ के राही;
सृजन कहीं पर राह देखता-
कहीं मचलती मूर्त्त तबाही।
जिन्हें देखना कठिन वही सब-
भू पर अपरम्पार लगा है।
कितना देख सकोगे देखो-
चित्रों का अम्बार लगा है।।

सार्थक आना

सुबह-शाम जो भी आते हैं।
कुछ देते कुछ ले जाते हैं।।

दुनिया है बाजार जहाँ पर-
तरह-तरह का दिखता मंजर।

लोग सभी व्यापारी जैसे-
मोल-तोल करते हैं वैसे-

कहीं हृदय का भाव बताते-
कहीं प्यार का मोल चुकाते।

कोई पिछली बात सुनाता-
कोई पौधा नया लगाता।

अपनेपन में कोई रोता-
कोई अपना सब कुछ खोता।

कोई लेता कोई देता-
कोई नाव सिन्धु में खेता।

सभी जगह है लेना-देना-
कहीं रत्न है कहीं चबेना।

अपनी डफली स्वर भी अपना-
अपना-अपना सब का सपना।

अपनी डाली लेकर आएँ-
हम भी अपना राग सजाएँ।

दुनिया से कुछ हम भी लेकर-
बेहतर करें इसे कुछ देकर।

तभी हमारा सार्थक आना-
कण-कण को है फूल बनाना।।

परिवर्त्तन का राग

गूँज रहा है गीतों का स्वर।
कितना सुखकर कितना मनहर।।

जब भी पहली किरण उतरती-
धीरे-से पग भू पर धरती।
लगती बड़ी सुहानी सत्वर-
मानों गूँजा गीतों का स्वर।।

श्रम से लथपथ मध्य गगन में-
चिन्तन के क्षण सूने मन में-
जगता लगता भाव-दिवाकर-
मानों गूँजा गीतों का स्वर।।

शून्य डगर पर चलते-चलते-
थम जाता दिन ढलते-ढलते;
ऐसे में भी यहाँ निरंतर-
गुंजित रहता गीतों का स्वर।।

पड़ती नहीं कहीं दिखलाई-
कैसी छवि लुक-छिप कर आई-
निशा सुन्दरी की है चादर-
मानो गूँजा गीतों का स्वर।।

खेल प्रकृति का देख रहे हैं-
वैभव की छवि लेख रहे हैं-
परिवर्त्तन का राग प्रबलतर-
गूँज रहा है गीतों का स्वर।।

सब को गले लगाए

मेरे और तुम्हारे स्वर में-
भेद न कोई दिखता;
शब्द भिन्न हों चाहे जितने-
भाव एक ही लिखता।

कहने को सब अलग-अलग हैं-
किन्तु एक परिभाषा;
हृदय-हृदय में एक तरह की-
आशा और निराशा।

ऊपर से छवि अलग-अलग है-
सब की मूर्त्ति निराली;
किन्तु रगों के रक्त-बिन्दु में
एक तरह की लाली।

फिर कैसा यह भेद अपावन-
जन-जन में है आया;
घृणा द्वेष का बीज भुवन में
किसने आज जगाया?

देखो, वृक्ष न बनने पाये-
भेद बीज की माया;
भू पर कभी न रहने पाए-
इस नागिन की छाया।

एक प्राण हम आओ, इसमें-
सुन्दर भाव जगाएँ;
जन-जन में मधु प्रीत जगाकर-
सबको गले लगाएँ।।

कहूँ अब

मैं किसे अपना कहूँ अब?
देखता हूँ विश्व फैला-
है चतुर्दिक दृश्य मैला;
है भरी जिस में घुटन मैं-
उस जगह कैसे रहूँ अब?

द्रोह मन में जाग उठता-
भाव शुभ पथ त्याग उठता;
जग-उलहना का विषम-विष-
किस तरह कब तक सहूँ अब?

है न कोई आज अपना-
हो न पाया सत्य सपना;
आत्म-पीड़क ज्वाल में मैं-
कब तलक ऐसे दहूँ अब?

✦ ✦ ✦

शक्ति-संबल सब वही है-
दीख पड़ता जो नहीं है;
मिल गयी है प्रेरणा तो-
क्षुब्ध सागर पर बहूँ अब।
मैं किसे अपना कहूँ अब।।

भेजे पतियाँ

अपलक नयनों से हेर रही पथ प्रीतम का भोली बाला,
उसके नयनों से छलक रही अनजाने ही उर की हाला।
पतझड़ के गर्म बयारों ने-
उसकी साँसों में ताप भरा,
धरती की छाती धड़की तो-
कर घाव गयी दिल पर गहरा।

कोयल की पंचम तानों से, दिल की धड़कन परवान चढ़ी,
फागुन के मादक झोंकों से, मन की सिहरन दिन-रात बढ़ी।
तूफान उठा जो अम्बर में-
बरबस अन्तर झकझोर गया,
झोंका जो आया मधुवन में-
दे गया हृदय में दर्द नया।

काले बादल जब उमड़ पड़े, तब बाला ने संदेश दिया,
प्रीतम से जाकर कह देना, वे जल्दी ही भेजें पतियाँ।।

सीमा में प्यार नहीं रहता

तुम बहुत दूर रहती मुझसे, पर इससे प्यार नहीं कमता।
सच मानो मेरी बातों को, सीमा में प्यार नहीं बँधता।।

जिस दिन तुम को अपना समझा-
सारे बन्धन को उठा दिया,
सच कहता हूँ उस दिन से ही-
पलकों पर तुमको बिठा दिया।
तुम पास रहो या दूर रहो, मन कभी न बँधन में बँधता।
सच मानो मेरी बातों को, सीमा में प्यार नहीं बँधता।।

मैं चकित मुग्ध हतज्ञान खड़ा-
मधु-तृषित व्यथा, उच्छ्‌वास लिए,
भू की छवि और हुई तब से-
जब से मन में मधुमास लिए।
जब प्राण-प्राण से मिलते हैं, कोई व्यवधान नहीं टिकता।
सच मानो मेरी बातों को, सीमा में प्यार नहीं बँधता।।

तुम सदा पास रहती मेरे-
तारों की झिलमिल छाँव में,
सपनों में मिल लेता तुम से-
चन्दा के स्वप्निल गाँव में।
चाहे जितनी भी दूरी हो, सपनों पर वार नहीं लगता।
सच मानो मेरी बातों को, सीमा में प्यार नहीं बँधता।।

प्रेमोन्मादिनी

आज प्रेमोन्मादिनी मैं।।

बेबसी की वेदिका पर-
कामना बलिदान होती,
मुग्ध आशा के अधर पर-
अवधि सीमाहीन सोती;
रात के उर पर दिवस की-
ग्लानि करती मौन नर्त्तन,
हीनता में लीनता ही-
घेरती है आज क्षण-क्षण;
साधना की राख पर हूँ, मूर्त्ति की आराधिनी मैं।

शून्य मेरा महल भरने-
मचल पड़ता स्वर्ग-वैभव,
पास आती प्रेम-क्रीड़ा-
रूप धर कर नित्य नव-नव;
भग्न मन पर है पड़ी गत-
वर्ण-दिन की मुग्ध छाया,
प्राण! उसमें ही लिपट कुछ-
शान्ति पाती तप्त काया;
दुःख में सुख पालती नित, प्राणधन! हत भागिनी मैं।
आज प्रेमोन्मादिनी मैं।।

आराधना

हो सफल सब साधना।
तुम कहाँ हो, खोजता हूँ-
बाट तेरी जोहता हूँ;
आ बनो तुम ज्योति दृग में, बस यही है कामना।
हो सफल सब साधना।।

स्वर जगा कर मैं पुकारूँ-
गीत में तुम को निहारूँ;
छन्द में मधु रूप बाँधूँ, पूर्ण हो यह याचना।
हो सफल यह साधना।।

रूप तेरा विश्व सारा-
नाम सब में है तुम्हारा;
है कठिन तुमको कहीं भी, एक छवि में बाँधना।
हो सफल यह साधना।।

आँख सब कुछ देख पाए-
ज्योति मन में खुद समाए;
सत्य का सब स्वत्व पाऊँ, कर रहा आराधना।
हो सफल यह साधना।।

नहीं मागूँगा

तुम पीड़ा ही देते जाओ है सादर यह स्वीकार मुझे,
सिर टेक तुम्हारे चरणों पर वरदान नहीं मागूँगा।

स्वागत है इन संघर्षों का-
जो विना कहे मेहमान बने,
उन अशुभ क्षणों का भी शत-शत-
जो प्याले में तूफान बने;
दाँतों पर रख दाँत, व्यथा पी जाऊँगा लेकिन तुम से-
भिक्षुक जैसे झोली फैलाकर दान नहीं मागूँगा।

पत्थर खुद ही पिघलेगा, या
चट्टान बनेगी यह काया,
कौड़ी की तीन विकेगी अब-
सुरसा जैसी तेरी माया;
फूल-फूल पर दया तुम्हारी जिन राहों पर हों नित बिखरी-
वे पथ हों बस तुम्हें मुबारक मैं अभियान नहीं मागूँगा।

नयनों में जो घिरी घटाएँ-
यह तो एक पृष्ठ जीवन का
आँसू दुख का साथी है, या
सरस गीत इस आकुल मन का;
काली रात घिरी जीवन में, चमक रहा है पर ध्रुवतारा-
इतना ही काफी है, स्वर्ण विहान नहीं मागूँगा।।

गति का संबल

फट पड़ी कुहा, भागी निशा, अम्बर पर लाली दौड़ रही-
अमर क्रान्ति की ज्वालाएँ भी, बन मतवाली दौड़ रही।
आज शहीदों के शोणित से-
बुझा रहे जो आग हृदय की,
नहीं जानते कैसी होती-
नयी भावना नील-निलय की?

लू-लपटों की चिनगारी अब, दूर-दूर तक फैल रही है-
अपने अरमानों की वेदी, जिससे गल-गल स्वयं बही है।
जगने इस जलती भट्ठी में-
कितनों को जलते देखा है,
इस उत्पीड़क भाव-भूमि के-
महलों को ढहते देखा है।

उसी लपट में झुलस रहे हैं, घृणा-द्वेष के पोषक सारे-
पता नहीं पर सत्य यही है, अपनी बाजी सब हैं हारे।
जिसके मन में प्रेम जगा है-
वही अडिग रह सकता केवल,
सदा उसी को जग पूजेगा-
वही बनेगा गति का संबल।।

प्रश्न

कोई मुझ से पूछ रहा है, क्यों लिखता हूँ गीत?
सच मानो मैं खोज रहा हूँ, जग में खोई प्रीत।।

हवा सिसकती आती प्रतिपल-
सिसक रहा है अन्तर-शतदल;
लगता जैसे बिछुड़ गया है, मेरा स्वर्ण अतीत।।

एक समय था मैं चलता था-
अंगारों पर मैं पलता था;
तरह-तरह के संकट में भी, मैं था सदा अभीत।।

✦ ✦ ✦

किन्तु आज हूँ मैं भरमाया-
क्या जाने, क्या खोया-पाया;
लगता जैसे सूखा गया है, मन का मृदु नवनीत।।

कहाँ पुनः अब मन बहलाऊँ-
खोयी निधियाँ क्योंकर पाऊँ?
खोज रहा हूँ वही पुनः मैं, होकर आज विनीत।।

निवेदन

सब कुछ तुम्हें निवेदित करता-
करो इसे स्वीकार!
ले लो मुझ से मेरे नाविक-
मेरा सब व्यापार!!

अगम सिन्धु है लहर मारता मैं हूँ यहाँ अकेला,
थक कर हार गया पर मिटता जग का नहीं झमेला।
जितना इसे हटाता, उतना पास चला आता है,
लेकिन मेरी वीण मुझी को, अपना गीत सुनाता है।
कैसे कह दूँ इन गीतों में रस का कोई नाम नहीं है,
जिन गीतों से दूर रहे तुम उससे मेरा काम नहीं है।
तुम ही मुझको जग में लाये तुम पर ही है आशा,
जनम-जनम से तुम्हें ढूँढ़ने की मन में अभिलाषा।

आज तुम्हें जब देखा मैंने-
अपने में साकार।
सब कुछ तुम्हें निवेदित करता-
करो इसे स्वीकार।।

जगती मादक पीड़ा

वढ़ जाती है पीड़ा।
कौन भला खिड़की पर आके मंद-मंद मुस्काती?
आँचल तनिक हटा, यौवन का मादक रूप दिखाती,
नयनों की बाँकी चितवन में कैसी नव तरूणाई-
खेल रही अधरों पर खिलती कलियों की अरूणाई;
वह तो सम्मुख अड़ी-खड़ी है मुझ में जगती ब्रीड़ा।
उसे देखकर, जाने मन में जगती कैसी पीड़ा?

✦ ✦ ✦

हाव-भाव है सहज, मयूरी जैस नृत्य दिखाए,
रस से बेबस बोल कि जैसे कोयल हूक जगाए;
धर कर खिड़की की छड़ को वह धीरे-धीरे गाती-
मुझे इशारे से ही हरदम अपने पास बुलाती;
देखो वही खड़ी है ऊपर सरक रहा है आँचल-
गोरे गालों तक पर फैला उसके दृग का काजल;
देख रही है, खुले नयन से खग-खगही की क्रीड़ा।
उसे देखते; जाने क्यों कर जगती मादक पीड़ा।।

अश्रु हृदय का गान बनेगा

जागो दुनिया-
 जाग रही है,
सब के जग में-
 जला रही है।

  व्यथा कथा है-
   बड़ी पुरानी;
  आदि काल की-
   अमर निशानी।

जब से सृष्टि-
 बनी है तब से;
चलती दुनिया-
 अपने ढब से।

  व्यथा-कथा को-
   गीत बनाओ;
  घाव हृदय का-
   नहीं दिखाओ।

घाव देख कर-
 सब हँस देंगे;
गीतों से सब-
 मधुरस लेंगे।

अश्रु हृदय का-
गान बनेगा;
जीवन की-
पहचान बनेगा।

हँसो- हँसे जग-
स्वयं हँसेगा;
भूतल पर नव-
सुमन खिलेगा।

दर्द हृदय-झंकार-
बनेगा;
बिछुड़े मन का प्यार-
बनेगा।।

आराधन

रुकता जो भी-
  जड़ होता है;
सब कुछ वह-
  अपना खोता है।

जीवन का कुछ-
  चिह्न न रहता;
किसी तरह का-
  भार न सहता।

सहता है जो-
  भार न भू पर;
वह होता है-
  निर्मम पत्थर।

जीवन को शव-
  नहीं बनाओ;
जागो जग का-
  भार उठाओ।

शव ही शिव तब-
  हो जाता है;
जब नव पौरुष-
  मुस्काता है।

और नहीं तो-
जीवन क्या है;
नाम, कार्य के-
साधन का है।

जागो, देखो-
भुवन जगाओ;
भू पर मानव-
जीवन लाओ।

यही सृष्टि का-
आराधन है;
जीव मात्र का-
वैभव-धन है।।

बापू

चल बसे बापू हमारे-
बात यह कहने न देंगे।
जब तलक जिन्दा कलम है-
हम तुम्हें मरने न देंगे।।
कर्ममय जीवन तुम्हारा-
स्वर्ण अक्षर में लिखेंगे।
ज्योति जो तुमने जलाई-
दीप वह बुझने न देंगे।।

खो दिया हमने तुम्हें तो-
पास अपने क्या रहेगा?
सत्य-पथ पर निडर बढ़कर-
कौन विप्लव क्रान्ति देगा?
विश्व ने जाना तुम्हें था-
पीड़ितों का रहनुमा,
तुम नहीं थे व्यक्ति-
थे स्वाधीनता के कारवाँ।

हर किसी की आँख नम है,
यह बड़ा बेदर्द गम है।
जब तलक है कौम जिन्दा,
हम तुम्हें मरने न देंगे।।

जवान दो

देश है पुकारता-
मुझे नये जवान दो।
खून दो अँगार दो-
नया गगन विहान दो।।

असीम किरण साज दो-
देश को सुराज दो।
लहू-लहू उफान दो-
कराल महाकाल दो।।

अनल किरीट माथ पर-
कफन लपेट गात पर।
विपद-शूल पर बढ़े-
नवीन वीर, प्राण दो।।

सागर के ज्वार पर-
कि लहर पर कगार पर-
बढ़ सके दुधार पर-
वह मनुज महान दो।।

देश है पुकारता-
मुझे नये जवान दो।।

आधी रात

निंदिया खोई आधी रातं।
याद किसी की घिर आई है भूली-भूली बात।।

दूर नगर वह देश पराया-
जहाँ प्राण पलता है;
इधर चाँद बादल से-
उलझा-उलझा-सा चलता है;
उसके नयन सघन-घन, जैसे भादों की बरसात।
निंदिया खो गयी आधी रात।।

सुधि आई मन विकल हो गया-
जीवन में विष घोल रहा है,
पास किसी डाली पर बैठा-
पंछी पी-पी बोल रहा है;
सिहर-सिहर उठते तरुवर के पीले-पीले पात।
निंदिया खो गयी आधी रात।।

मेंहदी उतर गयी होगी-
रंग होगा कुछ फीका-फीका,
उसी तलहथी पर आधारित-
होगा आज कपोल किसी का;
झुलस रहा होगा विरहा-से, सुन्दर कोमल गात।
निंदिया खो गयी आधी रात।।

तनी हुई भौंहें धन्वों-सी-
वीच जड़ी विन्दी होगी,
कजरारे दो कूल नयन में-
उमड़ी कालिन्दी होगी;
अधर कमल सिकुड़े होंगे, निशि में ज्यों जलजात।
निंदिया खो गयी आधी रात।।

गढ़ लूँगा

घिस गयी तूलिका छोड़ो तुम-
अब सृजन बन्द कर दो अपना,
जीने के लिए सृष्टि अपनी-
अपने हाथों मैं गढ़ लूँगा।

तेरे इन कम्पित हाथों से-
बन सकती अब तस्वीर नहीं,
जो एक बार है बिगड़ गयी-
बन सकती वह तकदीर नहीं;

खुल गया भेद जब से इनका-
नयनों की वर्षा बन्द हुई;
तुमने भविष्य के लिए लिखा-
वह भाग्य-रेख में पढ़ लूँगा।

सुनकर मेरा इतिहास करुण-
पर्वत भी देगा उगल आग,
यह धरती भी फट जाएगी-
सुन काँप उठेगा शेषनाग;

रख दो संघर्षों के सुमेरु-
उस राह जिधर जाना मुझको,
तुम खड़े देखते रहो मुझे
चोटी तक पर मैं चढ़ लूँगा।

मिट्टी के पुतलों में से भी-
तुम लो समेट जो बची जान,
मैं महज बाँस की वंशी से-
भर दूँगा उनमें अमर प्राण;

ले लो जो कुछ है शेष उसे-
मुझको कुछ भी परवाह नहीं,
किस्मत की फूटी डफली को-
अपने हाथों मैं मढ़ लूँगा।।

कलाकार

दूर रहो या पास रहो तुम-
गीत हमारे गाया करना,
जब-जब याद हमारी आवे-
पद-पद मन बहलाया करना।

खून-पसीने से दुनिया का-
कर्ज चुकाकर जब आता हूँ,
तब रजनी के सूनेपन में-
गाकर मन को बहलाता हूँ।

दिल का दर्द उभर जाता तब-
गीत आप ही बन जाता है,
दुनियावालो, किसे बताऊँ-
झरना क्यों झर-झर गाता है?

नीरव रात्रि विजन वेला में-
जब दुनिया निद्रा में जाती,
आप स्वयं रचना गढ़ लेती-
कड़ी-कड़ी रस से भर आती।

कितना दर्द लिए चलता हूँ-
कौन व्यथा मेरी पहचाने,
कितने सपने पलते मन में-
कोई इसको कैसे जाने।

तुनुक तार झंकृत होते तब-
कोमल नगमे गढ़ जाते हैं,
एक टेक जब गा लेता तब-
दर्द हृदय के कम जाते हैं।

गीत नहीं बेचा करता मैं-
केवल दर्द जगाया करता,
कलाकार है दुनिया सारी-
इससे उसे सुनाया करता।।

तड़प

विश्व क्षितिज पर फैल रहा है-
चारों ओर कुहासा;
सभी दिशायें धुंधली दिखती-
उठने लगा धुआँ-सा।

तड़प रही बेचैन हवाएँ-
प्राण-प्राण बेकल है;
कोई नहीं बता पाता है-
क्यों नर आज चपल है।

आगे महाविनाश दीखता-
प्रलय व्योम में मँडराता है;
मौन-मूक है खड़ा हिमालय-
मन-ही-मन वह पछताता है।

मानव-मन की बँधी उमंगें-
निस्सहाय-सी तड़प रही है;
कोई नहीं बता पाता है-
धार नदी की किधर बही है।।

साक्षी

तपकर कुन्दन बनी कल्पने-
बहुत बार अंगार पर;
कितनी रात गँवाई मैंने-
इसके हर श्रृंगार पर।

साक्षी है वेदना कि हमने-
कितने चित्र बनाए हैं;
नभ के चाँद-सितारे साक्षी-
कितने स्वप्न सजाए हैं।

सदा उठाती लहर जिन्दगी
मन के टूटे तार पर;
इसे मचलते देखा मैंने-
भावों के हर ज्वार पर।

साक्षी है हर रात कि हमने-
कितने दीप जलाए हैं;
साक्षी मेरी हर धड़कन है-
हमने जो दर्द सुनाये हैं।।

प्यासा

जीवन की बड़ी पिपासा।
मृग-तृष्णा क्षण-क्षण आती-
दूर दृगों से मुझे रुलाती;
आ-आ कर मिट जाता जैसे-
सब कुछ एक धुआँ-सा।

शान्त न पलभर रहने देती-
छीन हृदय से सब कुछ लेती;
छिन्न-भिन्न हो जाती पल में-
मन की सब अभिलाषा।

मन को कैसे शान्ति मिलेगी
कली हृदय की कहाँ खिलेगी;
भौतिकता में ढूँढ़ रहे हम-
कैसी जगी दुराशा।

सदा शान्ति है परम शक्ति में-
उसकी केवल चरण-भक्ति में;
भूल इसे ही खोज रहा जग-
भू पर प्यासा-प्यासा।
जीवन की बड़ी पिपासा।।

लाचारी

फागुन के मादक स्पर्श से-
कली-कली जब खिल जाती है;
ना जाने, बिन चाहे क्यों यों-
दिल की धड़कन बढ़ जाती है।

आग लगी कब, लहर उठी कब-
कहाँ लगी चिनगारी;
यह कैसी मन की विह्वलता-
यह कैसी लाचारी।

कितनी मोहकता बयार में-
कैसी भीषण ज्वाला
एक नया संस्पर्श हवा का-
बना गया क्यों मतवाला ?

क्यों नहीं सुलझा प्रश्न अब तक-
बिजली कौंध दिखाती;
यही पहेली है यौवन की-
उलझ-उलझ रह जाती।।

नयी ज्योति

तोड़ हृदय का वन्धन सारा-
जाग उठे हैं हम अनजाने;
भारत के कोने-कोने से-
गुंजित है उन्मुक्त तराने।

दुनियावाले समझ गए हैं-
भारत का इतिहास अमर है;
मरते हुए शहीदों के स्वर-
का आया उत्थान-प्रहर है।

विघटनकारी तत्त्वों का अब-
बहुत दिनों तक नहीं चलेगा;
आतंक और उत्पातवाद अब-
भरत-भूमि पर नहीं पलेगा।

जाग गया है बच्चा-बच्चा-
हम सब देश बचायेंगे;
घृणा-द्वेष के दानव को हम-
निश्चय दूर भगायेंगे।

पूरब के अम्बर को देखो-
लाली निखरी आती है;
ऊषा जगकर किरण-रश्मि से-
सब को आज जगाती है।

जागो भारतवासी देखो-
रात सिमटने वाली है;
नयी ज्योति की सबल रागिनी-
भू पर आनेवाली है।।

बहलाते हैं

हर रोज हवा जब चलती है-
कुछ नयी रोशनी लाती है;
नव संधि-जागरण-वेला में-
कुछ नयी रवानी आती है।

हर ओर उमंग नयी खिलती-
नव कली-कली मुस्काती है।
कुछ स्वप्न नया जगता दिन का-
औ' रात कहीं छिप जाती है।

हर रोज यही होता जग में-
दिन जगता है दिन ढलता है;
हर रात हृदय के दीये में
मधु स्नेह किसी का जलता है।

जो कोई चाहे जो कह ले-
पर इसकी बात निराली है;
हर रोज दिवस के ढलने पर-
रजनी ही आनेवाली है।

फिर रात स्वयं चल जाती है-
औ' दिन की उलझन जगती है;
पनघट पर मेला लगता है-
मरघट में आग सुलगती है।

परिवर्त्तन की इस हलचल में-
कुछ हम भी गीत सुनाते हैं;
काँटों से विंधे कलेजे को-
हम किसी तरह बहलाते हैं।।

अंधकार मिट जाएगा

सत्य।
किसी कन्दरा में नहीं–
पर्वत की किसी गुफा में नहीं
सत्य....
मिलता है अपने अन्दर–
भीतर का प्रकाश जगाने से।

चारों ओर–
अंधेरा है–
कुछ दिखाई नहीं पड़ता;
तो फिर कैसे मिटे–
हाँ। मिटेगा–
अपने आपको प्रकाश में लाने से।।

भीतर का प्रकाश
जगाएँ।
और अपने आपको प्रकाश में लाएँ।
तभी अँधकार मिटेगा–
भूतल रोशनी लेगा।
जूझना है
कहीं नहीं एकान्त में–
बल्कि यहीं, इसी
संसार दुर्दान्त में।।

आओ, हम धुनी जगाए
यज्ञ की शिखा प्रज्वलित करें।
सत्य आयेगा–
निश्चय आयेगा।
और यह
अंधकार मिट जाएगा।।

नहीं ढो पाऊँगा भार

भार नहीं मैं ढो पाऊँगा।
तुम कहते हो साथ चलूँ मैं-
सुघर रूप में यहाँ ढलूँ मैं-
लेकिन बोलो, झूठा सपना-
मैं कब तक दृग में पालूँगा।
भार नहीं मैं ढो पाऊँगा।।

साथ जिन्हें लेकर आता था-
जिनकी छाया में गाता था,
वही यहाँ अब रहे नहीं तब-
मैं किसको हृदय दिखाऊँगा।
भार नहीं मैं ढो पाऊँगा।।

एक तुम्हीं थे, जिस पर वारा-
तन-मन औ' सब सपना प्यारा;
कौन भला अब वैसे दृग में-
जिसको मैं पुनः बसाऊँगा।
भार नहीं मैं ढो पाऊँगा।।

देखी जग की सब अमराई-
कहीं न मिलती वह अरुणाई;
तुम न मिले, तो बोलो किसको-
मैं मन का गीत सुनाऊँगा।
भार नहीं मैं ढो पाऊँगा।।

उखड़ रहा विश्वास

उखड़ रहा विश्वास।
बहुत दिनों से आस लगी थी–
सूने में ही दृष्टि लगी थी–
किंचित कोई रूप तुम्हारा–
झलका मन के पास।
उखड़ रहा विश्वास।।

एक बूँद भी गिरी न नभ से–
रहा न नाता कुछ सौरभ से;
चातक रटता रहा जनम भर–
मिटी न उसकी प्यास।
उखड़ रहा विश्वास।।

दीप-दीप से जल जाता है–
मन का मोम पिघल जाता है;
जलकर जलता शलभ अकेला–
छोड़ रहा उच्छ्वास।
उखड़ रहा विश्वास।।

युग-युग से संसृति चलती है–
दृग में स्नेह-लता पलती है
निःश्वासों से मिलता प्रतिपल
जीवन का आभास।
उखड़ रहा विश्वास।।

तुम हो आई

कभी-कभी लगता है जैसे- सचमुच तुम हो आई।
बिना कहे कुछ सुने बिना ही- मन में स्वयं समाई।

आती है जब घोर निराशा-
बात न कोई जगती;
सूने की कुछ सरपट ध्वनि-सी
श्रवण रन्ध्र में लगती।
मन में कोई छवि आती है, छुई मुई शरमाई।
कभी-कभी लगता है जैसे, सचमुच तुम हो आई।।

संध्या की झुरमुट में जा जब-
नदी किनारे रहता;
सरिता का जल छप-छप करके-
इंगित से कुछ कहता।
दूर क्षितिज से तेरे मन की पड़ती बात सुनाई।
कभी-कभी लगता है जैसे, सचमुच तुम हो आई।।

महज कल्पना है या इसमें-
अंश सत्य का दिखता;
कौन बताये भाग्य लेख में-
विधना क्या-क्या लिखता।
जो हो हर क्षण तेरी लीला, पड़ती मुझे दिखाई।
कभी-कभी लगता है जैसे, सचमुच तुम हो आई।।

स्नेह-जलद

जितना भी नर कर सकता है-
करता है सुख पाने को;
भीड़ भरी इस दुनिया में बस-
अपनी प्यास मिटाने को।

स्वार्थ-लिप्त है हृदय कि कुछ भी-
बाहर देख न पाता है;
जान-बूझकर अपने मन को-
अपनों में बहलाता है।

सब के सुख में अपना जब तक-
विलय नहीं हो पायेगा;
तब तक कोई भी दुनिया में-
सुखी नहीं कह लायेगा।

कुछ ही लोगों में सिमटा यह-
दिखता, जो संसार नहीं;
एक सरित-सी दिखती जो है-
वह है पारावार नहीं।

यही चाहिए सब मनुजों को-
रोटी-वस्त्र-मकान मिले;
मिटे विषमता जन-जन तक को-
जीने का सामान मिले।

तभी सुखी सब रह पायेंगे-
समता का ध्वज फहरेगा।
कठिन विषमता मिट जायेगी-
जलद-स्नेह का फहरेगा।।

अनुशासन-यज्ञ

जिन्दगी के हर दौर में-
मिलती हैं चट्टानें;
धारा का वेग रोकने को-
ताकि जिन्दगी बेतहाशा न भागे।
एक संयम है जिसे [illegible]
मानना पड़ेगा,
कोई भी जीवन-
नहीं बढ़ सकता है अनुशासन को त्यागे।

अनुशासन स्व-बन्धन है
किन्तु किसी पक्षी के
पिन्जरे की तरह नहीं
ठीक वैसे जैसे नदी के कूल-किनारे।।
या फिर ठीक वैसे जैसे-
अमराई में ठीक समय पर
गूँजे कोयल की कूक-

जैसे मधुमास हर शीत के बाद पधारे।
जब भी जीवन बढ़ा है-
जब भी कोई उतुंग शृंग पर,
चढ़ा है; लक्ष्य को
हस्तामलक करने के पहले उसे तपना पड़ा है।

अनुशासन के यज्ञ-कुण्ड
में, यज्ञ-वेदियों की
अग्नि-लपट में-
कौन जाने शरीर को कितना कसना पड़ा है।।

प्यार मचलता रहा

मेरे मन मंदिर में सुधि का-
दीपक जलता रहा रात भर।
एक घटा-सी
उठी गगन में
कौंधी बिजली
ज्योति अनामिल
राह बनाती
पतली-पतली
मेरी चाहों के
शलभों को
दीपक छलता रहा रात भर।
दीपक जलता रहा रात भर।।

तरह-तरह की यादें आईं
दृष्टि-पटल पर-
हँसी विमल औ'
कभी नयन में
अश्रु उमड़ कर;
सपना पलता रहा रात भर।
दीपक जलता रहा रात भर।।

कोई आए
स्नेह तनिक दे
शुष्क दिये में;
प्रीति पुरातन
पुनः उमड़कर
जगे दिये में;
प्यार मचलता रहा रात भर।
दीपक जलता रहा रात भर।।

जाने वाला लौट न पाता

जाने वाला लौट न पाता।
यों तो कहते- कहने वाले-
इत्यवृति की होती रहती,
-पुनरावृत्ति,
धार नदी की जो बह जाती-
दूर कहीं छिपती, उसकी भी होती है-
आवृत्ति।

किन्तु यही व्यावहारिक, नभ का
टूटा तारा-
कहाँ पुनः लहराता?
जाने वाला लौट न पाता।।
सब कहते हैं रात्रि-प्रिया के-
विरह-ताप में दिन तपता फिर-
रजनी तपती;
एक-दूसरे को पाने को-
रात दिवस की दौड़ धूप की
छटा विहँसती।

किन्तु तनिक उपवन में देखो
झड़ा फूल-
फिर कब मुस्काता?
जाने वाला लौट न पाता।।
नेह धरा का तपकर ऊपर-
बनकर बादल भू पर,
अविरल झरता।

एक पुरातन क्रम है-
प्रतिपल शुष्क भुवन का
अन्तर भरता।

किन्तु सलिल के बिंदु सिन्धु में-
लीन हुए जो,
पुनः कहाँ वह रूप दिखाता?
जाने वाला लौट न पाता।।

उलहना

देगा कौन उलहना?

मान्ना कुछ भी नहीं किया है–
जग पर केवल भार दिया है;
लेकिन इसका कारण क्या है–
किसको क्या है कहना?
देगा कौन उलहना।

खड़ा समाज रहा पथ रोके–
सब ने लूटा अपना हो के;
कठिन प्रहार नियति का भी तो–
पड़ा मुझे ही सहना।
देगा कौन उलहना।।

अब तो नहीं शिकायत कोई–
जी भर कर नित आँखें रोईं;
अन्तिम क्षण तक ऐसे में ही–
प्राणों को है रहना।
देगा कौन उलहना।।

/

अपना न रहा

अपना सुख-दुख-
अपना न रहा।।
कहीं विपिन में-
जाकर खोया,
कहीं अकेले-
जीभर रोया;

आँख खुली तब-
देखी बाधा;
तड़प रहा जग-
मुझ से ज्यादा।

सीमित शेष-
तड़पना न रहा।
अपना सुख-दुख-
अपना न रहा।।

वर्षा-आतप-
शीत-बवण्डर;
जन-जन सहते-
शीश झुकाकर।

त्राण किसी को-
कहाँ मिला है?
ऐसे में कब-
सुमन खिला है?

मेरा कँपना-
कँपना न रहा।
अपना सुख-दुख-
अपना न रहा।।

चाँद-सितारे-
बिखर गये हैं;
तरू-तरू पल्लव-
सिहर गए हैं।

चाह हमारी-
चाह सभी की;
भाव प्रवण है-
राह सभी की।

मुझ तक ही यह
सपना न रहा।
अपना सुख-दुख
अपना न रहा।।

बैठो मेरे पास

आओ, तुझको गीत सुनाऊँ-
बैठो मेरे पास।
वहुत दिनों से चाह रहा हूँ-
देख तुम्हारी राह रहा हूँ;
मन का कुछ दर्द बताऊँ-
बैठो मेरे पास।
आओ तुझको गीत सुनाऊँ-
बैठो मेरे पास।।

पूरी हुई न कोई शिक्षा-
मिली प्यार की कभी न भिक्षा;
आओ, क्षण भर मन बहलाऊँ
बैठो मेरे पास।
आओ, तुझ को गीत सुनाऊँ
बैठो मेरे पास।।

चंचल जैसे मृग का छौना-
छू न सका नभ मानव बौना;
बोलो, कैसे तुझे बुलाऊँ
बैठो मेरे पास।
आओ, तुझको गीत सुनाऊँ-
बैठो मेरे पास।।

टूटे लज्जा का सब बन्धन-
रहे न कुछ भी मुझ से गोपन;
तुझ में निज अस्तित्व मिटाऊँ-
बैठो मेरे पास।
आओ, तुझको गीत सुनाऊँ-
बैठो मेरे पास।।

लीलामय

कहते सब-
जग बड़ा,
पुरातन;
शान्ति नहीं दे पाता।

एक तरह-
का रूप,
विद्ध है;
देख हृदय अकुलाता।।

खिलते जो-
दल यहाँ,
सदा से;
रूप विभा फैलाते।

एक तरह-
से विटप,
सलोना;
पंथी मन बहलाते।

झरना झर-
कर एक,
तरह ही;
शीतल धरती करता।

एक तरह-
से उर्वर,
भू पर
अंकुर नया उभरता।

एक सभी-
है किन्तु
वहीं पर
होता है परिवर्त्तन।

एक रूप
आवर्त्तन
में ही
जीवित शाश्वत जीवन।।

निश्चय

उजड़ रहा जो बाग उसे हम-
आओ पुनः सजाएँ;
सूख रही डाली-डाली पर-
जीवन-रस बरसाएँ।

बड़ी जतन से इस बगिया में-
हमने फूल खिलाए;
लू की लपट चली अब देखो-
फूल नहीं मुरझाए।

आँखों के पानी से सींची-
इसकी क्यारी-क्यारी;
आँधी आई आज लूटने-
हरी भरी फुलवारी।

बनकर हम चट्टान अड़ेंगे-
घुसने उसे न देंगे;
जब तक यह है नहीं सुरक्षित-
हम भी चैन न लेंगे।

अन्धकार बढ़ रहा मगर हम-
ज्योति न बुझने देंगे;
फूलों की हर पंखुड़ियों पर
जगते प्राण रहेंगे।

✦ ✦ ✦

हम सब का यह दृढ़ निश्चय है-
कभी नहीं टल सकता;
बाधाओं का प्रबल वेग भी-
कभी नहीं छल सकता।।

एकान्त की चाह

अपना यह मन शान्त नहीं है।
सदा पराये में सब जगते-
अपने से सब डरते रहते;
किसी अन्य के दृष्टि-घात से-
सपना भी आक्रान्त नहीं है।
अपना यह मन शान्त नहीं है।।

ध्यान लगाया, दीप जलाया-
किसी विपिन में मन बहलाया;
गेह छोड़ कर चला, तो देखा-
अन्तर-तर उद्भ्रान्त नहीं है।
अपना यह मन शान्त नहीं है।।

✦ ✦ ✦

सूने घट में छटा उतरती-
प्रिय की छवि चुपचाप उभरती;
किन्तु यहाँ प्रतिपल का मेला-
आज कहीं एकान्त नहीं है।
इसीलिए मन शान्त नहीं है।।

अंतिम गीत

सुबह-शाम हर रोज तुम्हें मैं-
अपने पास बुलाता हूँ।।

हर रोज ऊषा जब खिलती है-
जब कली-कली से मिलती है-
फूलों की डाली हिलती है-
सुमनों के पाँखों में सब दिन
तुम्हें ढूँढ़ने आता हूँ।
सुबह-शाम हर रोज तुम्हें मैं-
अपने पास बुलाता हूँ।।

मिटता तम का सूना घेरा-
आओ, अब है नहीं अँधेरा-
मेरा क्या? है सब कुछ तेरा-
जीवन की भरपूर कमाई-
तुम पर सदा लुटाता हूँ।
सुबह-शाम हर रोज तुम्हें मैं-
अपने पास बुलाता हूँ।।

तुम गोरीतन्वंगी बाँकी-
तेरी कितनी मधुमय झाँकी-
सूने में हूँ मैं एकाकी-
आओ, तेरे प्राणों से लग-
अंतिम गीत सुनाता हूँ।
सुबह-शाम हर रोज तुम्हें मैं-
अपने पास बुलाता हूँ।।

कैसे बात कहूँ?

किससे बात कहूँ?

कहना-सुनना एक कला है-

भावुक होना एक बला है;

तृण भी पास नहीं फिर कैसे-

बीच धार के पार बहूँ मैं?

किससे कैसे बात कहूँ मैं?

लोग सुनेंगे, हँस भर देंगे-

भार न अपने ऊपर लेंगे;

दुख का कातर भार सँभाले-

कब तक जग में मौन रहूँ मैं?

किससे. कैसे बात कहूँ मैं?

अपने और पराये आकर-

दिया नियति ने भार हृदय पर;

"उफ" न कहा सब सहता आया-

कब तक ऐसे और सहूँ मैं?

किससे कैसे बात कहूँ मैं?

मधु क्षण आओ

खोज रहा हूँ विगत क्षणों को-
मेरे मधुक्षण आओ।।

कैसी थी ऊषा की लाली-
विहँस उठी थी डाली-डाली;
तड़प रहे कण अब निदाघ से-
मेरे मधु कण आओ।
खोज रहा हूँ विगत क्षणों को-
मेरे मधुक्षण आओ।।

एक ठौर थी सुखद विभामय-
सभी तरह से मृदुल निरामय;
शुष्क हुआ सब खोज रहा मैं-
मेरे मधुवन आओ।
खोज रहा हूँ विगत क्षणों को मेरे मधुक्षण आओ।।

चातक प्यासा टेर लगाता-
नभ का अन्तर पिघल न पाता;
सूख रही प्राणों की बाती-
मेरे मधुवन आओ।
खोज रहा हूँ विगत क्षणों को-
मेरे मधुक्षण आओ।।

राग जगाओ

तुझको कितना मान दिया है।
कितना, क्या सम्मान दिया है?
रस निचोड़कर अन्तर-तर का-
मन का मधुघट तुझ पर ढरका।

शेष न कुछ भी रहा हृदय में-
डूबे तारे नील निलय में।
भावों का मृदु कमल खिला कर-
केश-राशि में दिया सजाकर।

मैंने अपना स्नेह जलाया-
दृग का सारा तिमिर हटाया।
अब तो कुछ भी पास नहीं है-
अपने पर विश्वास नहीं है।

और भला अब क्या दे सकता
रह-रह अविरल हृदय तड़पता
वपुस माँगते वह भी दूँगा-
पास न अपने कुछ रक्खूँगा।

खोल दिया उर का वातायन-
ले लो जितना चाहो गायन।
झोली में जितना भर पाओ-
ले लो मधुरिम राग जगाओ।।

वर्षोत्सव

पल-पल क्षण-क्षण बीत रहे हैं।
जीनव के घट रीत रहे हैं।

बचपन और जवानी आई-
घड़ी-घड़ी की थी पहुनाई;
चली गयी छवि दूर कि उसकी-
आज न दिखती है परिछाईं।
सपने सदा अतीत रहे हैं।
जीवन के घट रीत रहे हैं।।

बीते क्षण को रोक न पाए-
रहे सदा ही हम भरमाए;
पैंसठ फूलों के उपवन में-
कितने नूतन राग जगाए।
गाते सब दिन गीत रहे हैं।
जीवन के घट रीत रहे हैं।।

प्रतिपल प्रतिक्षण लगता अभिनव-
मना रहा हूँ यह वर्षोत्सव;
अपने और पराये का शुभ-
मिले यही जीवन का आसव।
पाते सब की प्रीत रहे हैं।
जीवन के घट रीत रहे हैं।।